Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. V, Issue No. X, April-2013, ISSN 2230-7540

भारतीय मुक्ति संग्राम की वेशता का अध्ययन

AN INTERNATIONALLY INDEXED PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. V, Issue No. X, April-2013, ISSN 2230-7540

भारतीय मुक्ति संग्राम की वेशता का अध्ययन

Vikash Kumar[1]* Dr. Pushpa Kumari[2]

[1] Research Scholar, Bhimrao Ambedkar University

[2] Professor, Department of History, L. S. College, Muzaffarpur

सार – ***स्वाधीनता के पश्चात लिखी गई हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों का संचयन है। ये कहानियाँ स्वातंत्र्योत्तर काल की हिन्दी कहानी के विभिन्न रचनात्मक पक्षों और बदलावों की साक्षी रही हैं, और अपने दौर में सर्वाधिक चर्चित रही हैं और सराही गईं। यहाँ हिन्दी के मानसिक उद्वेलन, चिंताओं, सरोकारों के साथ-साथ हिन्दी कहानी के स्वातंत्र्योत्तर विकास क्रम भी दिखते हैं। यह संकलन आजादी के बाद के समाज की संपूर्ण छवि प्रस्तुत करता है। इन कहानियों में अपने समय की दारुण परिस्थितियों से सख्ती के साथ निपटने की रचनात्मक तैयार दिखती है।***

----------X----------

प्रस्तावना

गत दो-तीन दशकों में भारत में जिस प्रकार के राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक स्खलन और परिवर्तन दिखायी दिये हैं, तथा नई विश्व-व्यवस्था की परिकल्पना और साम्प्रदायिक उभारों ने हमारी जीवन शैली को जिस तरह हिलाया है, उनके ताजा और मौलिक अनुभव इन कहानियों में व्यक्त हुए हैं। दलित चेतना और स्त्री चेतना से भी बीते दिनों हिन्दी कहानी समृद्ध हुई है। यह संकलन उस प्रसंग में भी अपना बयान प्रस्तुत करता है। हिन्दी कहानी की विशाल दुनिया को एक संकलन में समेटना असंभव है। पर इतना तय है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में हिन्दी कहानी के जितने रंग मुखर हुए, उसकी झाँकी यहाँ अवश्य है।

कहा जाना चाहिए चाहिए कि कहानी की जरूरत उसी समय सिद्ध हो गई थी जब हिन्दी के आचार्यगण खड़ी बोली को साहित्य की मुख भाषा के रूप में विकसित स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रहे थे। वास्तव में उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ की कड़ी में हिन्दी भाषा के उन्नयन और गद्य-विधाओं के सूत्रपात ने जिस भाषाई जनतांत्रिक का निर्वाह करते हुए साहित्य रचना की नींव रखी, उसका ध्वन्यार्थ आज की रचनाओं में भी अनुगूंजित है। उत्तर भारतेन्दु युग जिस रचनात्मकता के संक्रमण का दौर था, उसमें भले ही किसी एक कालजयी रचना का जन्म न हो सका, किन्तु रचना का उन्मेष हो चुका था। देवकीनंदन खत्री और गोपालराम गहमरी इत्यादि ने तिलिस्मी ताने-बाने का गल्प तैयार कर कथा-सृजन की अच्छी वृत्तांतमूलक जमीन तैयार कर दी थी। साथ ही इनकी रचनाओं ने हिन्दी का एक बहुत बड़ा पाठकवर्ग भी तैयार कर दिया था। उस समय तक उत्तर भारत में सरकारी स्तर पर फारसी भाषा नहीं थी। तत्कालीन कथा-लेखन की जुबान खत्री-गहमरी के भाषाई तिलिस्म के इर्द-गिर्द बनती दिखाई देने लगी थी। परन्तु बीसवीं सदी का हिन्दी कहानी का कथ्य दूसरे ही आस्वाद पर विकसित हुआ। कहानी में जमीन और समय के यथार्थ से जुड़ने की कोशिश आरंभ से ही दिखाई देने लगी। हालांकि भारतेन्दु युग की कविताओं, नाटकों, निबंधों ने साहित्य को तिलिस्मी वायवीयता और अतिरसिकप्रियता से मुक्ति पहले ही दिला दी थी। उसका परिवर्द्धित विस्फोट द्विवेदी युग के साहित्य में दिखाई देता है।

अल्पना मिश्र, भीतर का वक्त

अल्पना मिश्र की कहानियाँ जिस सघनता और सहजता के साथ सम्बन्धों और स्थितियों की बाहरी दुनिया से 'भीतर' को देखती हैं वह आज के स्त्री-मन में हो रहे बड़े परिवर्तन की ओर संकेत करती है। आज की स्त्री अपनी लैंगिक वर्जनाओं की सीमा को लाँघकर अपने व्यक्तित्व की खोज कर रही है और यह खोज बौद्धिक स्वावलम्बन की ओर उन्मुख है स्त्री की पालतू रस परस मुद्रा और इस्तेमाल हो जाने की विवशता पर मर्माघात करने की अदभुत क्षमता अल्पना में मौजूद है। हम अल्पना से उस गहरी,अन्तर्दृष्टि की भी अपेक्षा करते हैं जो स्त्री की जीविका

www.ignited.in

और आर्थिक स्वतन्त्रता के नये संवेदन संस्कार को भी अभिव्यक्त करेगी।

इस बार मैं बहुत सावधानी से चल रही हूँ। पैर दबाकर, एकदम धीरे। मेरी आहट, इस बार वह जान नहीं पायेगी। मैंने अपने दोनों हाथ पीछे कर लिये हैं। आँखें उस पर टिका ली हैं और बहुत धीरे, सचमुच बड़ी सावधानी से आगे बढ़ रही हूँ। यह रोज होता है। रोज सुबह का अभ्यास। सुबह का घण्टा दो घण्टा बस इसी की भेंट चढ़ जाता है। न जाने कहाँ से रोज चली आती है चमकती हुई, गाती हुई। उसका गाना न जाने क्यों मुझे इतना काटता है। शरीर में लहर उठने लगती है-साँप के काटे की लहर। मैं दौड़कर अखबार उठा लेती हूँ। मोड़कर उसे मोटा-सा बेंत जैसा रूप देती हूँ। चुपके से इस कागज बेंत को पीछे छिपाते हुए सावधान, धीरे कदमों से उसकी तरफ बढ़ती हूँ। लेकिन वह है कि मुझे मेरा लक्ष्य नहीं पूरा करने देती।

भूमंडलीकरण

भारत की आध्यात्मिक धरोहर और मुक्ति कामना को संप्रेषित करने वाले योगिराज अरविंग घोष, सर्वपल्ली राधाकृष्णन, राजनीतिक मुक्ति के साहित्यिक प्रणेता सुब्रहमण्यम भारती और महात्मा गाँधी जैसे संघर्षशील सिद्धांतकारी मौजूद थे, पर 'भारतीय सामाजिक यथार्थ' के, एक मात्र प्रस्तुतकर्ता प्रेमचन्द ही थे।

और यह लगभग विरोधाभासी आश्चर्य है कि इसी दौर में कविता की मुख्यधारा पौराणिक आख्यानवाद और रूमानी छायावाद के छंद विधान में आबद्ध थी, परन्तु कहानी ने वृत्तांत का काल्पनिक छंद विधान त्याग कर ठोस सामाजिक यथार्थ को आत्मसात् कर लिया था। कहानी किस्सागोई से निकलकर, मनोरंजन और रसिकता से मुक्त होकर कथन के लिए सीमांतों तक पहुंची थी और मानवीय अनुभव की समांतर दुनिया का निर्माण कर रही थी। हिन्दी कहानी के इस दौर में प्रेमचन्द्र के अतिरिक्त शिवपूजन सहाय, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी, सुदर्शन, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, जयशंकर प्रसाद, ज्वालादत्त शर्मा जैसे कथा शिल्पी शामिल थे। सन् 1916 में प्रेमचन्द ने अपनी प्रख्यात कहानी 'पंच परमेश्वर' लिखकर हिन्दी कहानी का मिजाज और वैचारिक आधारभूमि ही बदल दी थी।

इसी दौर के साथ और कुछ बाद में आती हैं वृंदावन लाल वर्मा, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', रामवृक्ष बेनीपुरी, यशपाल, अज्ञेय, जैनेन्द्र कुमार, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव, इलाचन्द्र जोशी, भगवती चरण वर्मा आदि की कहानियां। भले ही इस दौर के सभी कथाकारों ने अलग-अलग भावभूमि की कहानियाँ लिखी हों, किन्तु इनका विस्तृत कोलाज मुकम्मिल तौर पर यथार्थवाद और मानवतावादी है। इस दौर तक आते-आते हिन्दी कहानी का अनुभव फलक बहुत विस्तृत हो गया है। सामाजिक विद्रूपता से लेकर मनोजगत की संघटनाओं और ज्वलंत राष्ट्रीय मुद्दों तक पर इस दौर में बेमिसाल कहानियां लिखी गईं।

आजादी मिलने के बाद हिन्दी की कथा रचना ने दूसरी महत्वपूर्ण करवट ली या कि उसे लेनी पड़ी। क्योंकि आजादी से पहले जिस समाज की परिकल्पना की गई थी वैसे समाज के निर्माण में संदेह दिखने लगे थे। दूसरे विश्व युद्ध, विभाजन की त्रासदी, और समानता के सपनों के बिखरते परिदृश्य ने देश की जनता का मोहभंग कर दिया था। फलस्वरूप कहानीकार की नई पीढ़ी ने अपनी-अपनी संवेदनाओं की नई जमीनें तलाशीं। अपने-अपने भाषाई और सामाजिक यथार्थ के अनुरूप नए रचना बोध की खोज की। एकाध कहानियां तो सभी पत्रिकाओं में छपती थीं परन्तु कथा-रचना के इस नए बोध का समवेत सर्जनात्मक विस्फोट कहानी विधा को समर्पित 'कहानी' नामक पत्रिका में हुआ, जिसके यशस्वी संपादक प्रेमचन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र श्रीपत राय थे। इसकी पहचान अमरकान्त की डिप्टी कलक्टरी, मार्कण्डेय की 'हंसा जाई अकेला' कमलेश्वर की 'राजा निरंबसिया', राजेन्द्र यादव की 'जहां लक्ष्मी कैद है', शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', उषा प्रियंवदा की 'वापसी', मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक', निर्मल वर्मा की 'परिंदे' रांगेय राघव की 'गदल' कृष्णा सोबती की 'बादलों के घेरे' विष्णु प्रभाकर की 'धरती अब भी घूम रही है' आदि में मौजूद है। विभाजन की त्रासदी और तीखे मोहभंग के यथार्थ ने इस दौर में बहुआयामी अभिव्यक्ति पाई।

भारतीय मुक्ति संग्राम की वेशता का अध्ययन

पांचवे दशक के आते-आते इस प्रवृत्ति ने हिन्दी कहानी में 'अनुभव की प्रमाणिकता' ने सहज और स्वाभाविक विस्तार पा लिया। बाद में इस अनुभव और रचना विस्तार को 'नई कहानी' का नाम दिया गया। जो कि एक आदोलन बना और जिसने हिन्दी कहानी के सरोकारों को, और स्वरूप को बदल कर उसके विकास क्रम का सार्थक रचना-मार्ग प्रशस्त किया। हालांकि सन् उन्नीस सौ पचास के आस-पास से ही कहानियों के कथ्य और ट्रीटमेंट की शैली में परिवर्तन प्रक्रिया शुरू हो गई थी। किन्तु इसका नामकरण सन् उन्नीस सौ पचपन में हो सका। इसकी नव्यता को पहचानकर इसे 'नई कहानी' की संज्ञा से अभिहित करने का काम प्रगतिशील धारा के कवि दुष्यंत कुमार ने 'कल्पना' पत्रिका के जनवरी 1955 के अंक में किया। कहानी के नए सरोकारों और प्रयोगधर्मिता को लेकर डॉ. धर्मवीर भारती ने 'धर्मयुग' में कहानी के बदले हुए स्वरूप को रेखांकित करते हुए कहानीकारों-मोहन

राकेश, कमलेश्वर और राजेन्द्र यादव का त्रिकोण स्थापित कर दिया। इसे कथालोचना में कुछ विचलन भी पैदा हुआ परन्तु सन् 1954 के 'कहानी विशेषांक' ने नई कहानी की वैचारिक भूमि पहले ही स्थापित कर दी थी। अमरकांत की कहानी 'डिप्टी कलक्टरी' और कमलेश्वर की कहानी 'राजा निरबंसिया' लिखी जा चुकी थीं। इसी क्रम में मोहन राकेश का कहानी संग्रह 'नए बादल' सन् 1956 में आया। इसी दौर में निर्मल वर्मा की कहानी 'परिंदे' और भुवनेश्वर की कहानी 'भेडिये' और उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' पर चर्चाएं शुरू हो चुकी थीं। इन्हीं कहानियों को नई कहानी की प्रारंभिक कहानियों में गिना जाता है। इनके अलावा 'कहानी' और 'नई कहानियां' पत्रिकाओं ने इस आंदोलन की अधिकारिक रूप से घोषित पत्रिका थी।

दरअसल नए कहानीकारों ने यह महसूस किया कि वैचारिक स्तर पर यह मूल्यों के विघटन का दौर है। इस दौर में संदेह, अविश्वास, मोगभंग, भय और आशंका के व्यापार ने आदर्शवाद की सुखद कल्पनाओं को हाशिये पर डाल दिया था। इसलिए आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, व्यक्तिवाद, साहित्यवाद, क्षणवाद, यथास्थितिवाद और इतिहासहीनता या फ्रॉयडवाद को नाकाफी समझ जाने लगा। और संबंधों के नए समीकरणों के बीच व्यवस्था के अंतर्विरोधी को सामने लाया गया। नई कहानी ने संयुक्त परिवार के ह्नास, नौकरी पेशा व शहरीकृत महत्वाकांक्षी नए मध्यवर्ग का उदय, शहरीकरण और पूंजी के बढ़ते वर्चस्व और बढ़ती आर्थिक-सामाजिक विषमता को खास तौर से रेखांकित किया। शहरीकरण और पारिवारिक विघटन के कथ्य भी सामने आए। नए कहानीकारों के तर्क के मुताबिक आजादी के बाद जिस प्रकार शहरी मध्यवर्ग की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई, उसी प्रकार उसकी समस्याओं का घनत्व भी उसी अनुपात में बढ़ता गया। इन स्थितियों के प्रमाणिक स्वर उस दौर की कहानियों में मौजूद हैं। इस बीच आंचलिक कहानियों ने भाषाई देशजता और ग्रामीण यथार्थ की नई जमीन तोड़ी। मार्कण्डेय, शिव प्रसाद सिंह, फणीश्वरनाथ रेणु, शैलेश मटियानी, शेखर जोशी, विद्यासागर नौटियाल, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, विजयदान देखा आदि की कहानियों में आंचलिक यथार्थ का सघन, विद्रूपमय, और करुणापूरित संसार सामने आया। ऐसा नहीं कि इसमें उल्लास नहीं था, पर उल्लास के साथ-साथ ग्राम समाज की पीड़ा, परिवर्तनहीनता और बिडंबनाएं भी बड़ी शिद्दत से सामने आईं।

ममता कालिया, मुखौटा

ममता कालिया की नवीतम् और चर्चित कहानियों का संकलन है 'मुखौटा'।

इन कहानियों में रचनाकार ने अपने समय और समाज को परिभाषित करने का भरपूर सृजनात्मक जोखिम उठाया है। संग्रह की हर कहानी में ममता कालिया की प्रयोगधर्मिता और संघर्ष चेतना बोलती है। शीर्षक कहानी 'मुखौटा' में छात्र वर्ग में आरक्षण जैसे मुद्दे का यथार्थ तथा 'रोशनी की मार' में दलित चेतना का उभार अपने पूरे तेवर के साथ मौजूद है। लेखिका कभी समाज के पूरे परिवेश में समकालीन सरोकार ढूँढ़ती है तो कभी नयी स्वातंत्र्योत्तर नारी को उसके पूरे वैभव और संघर्ष में चित्रित करती है। इन कहानियों में अनुभव की दीप्ति, दृष्टिकोण के खुलेपन के साथ हिन्दी कहानी के इस स्वरूप को परिभाषित करती हैं जिसकी पाठक को हरदम तलाश रहती है।

समकालीन कथा लेखन में इस प्रकार के सहज, मेधावी, संवेदनशील और प्रफुल्लित व्यक्तित्व दुर्लभ हैं जो व्यापक समाज के प्रति इतनी बेबाक अभिव्यक्ति कर सकें। सम्बन्धो का खुला स्वीकार और चुनौतियों से साक्षात्कार इस सभी कहानियों का प्रमुख स्वर है। इनमें चालू मुहावरे वाला कटखना नारीवाद नहीं वरन् समग्र जीवन और परिवेश के प्रति सजग, सचेत, प्रतिबद्धता है।

'पहले वाक्य से ममता कालिया की रचना मन को बाँध लेती है और अपने साथ बहाए लिए चलती है। कुछ इसी तरह जैसे उर्दू में कृष्णचन्द्र और हिन्दी में जैनेन्द्र की रचनाएँ। यथार्थ का आग्रह न कृष्ण था, न जैनेन्द्र का, लेकिन ममता रूमानी या काल्पनिक कहानियाँ नहीं लिखती। उनकी कहानियाँ ठोस जीवन के धरातल पर टिकी हैं। निम्नमध्यवर्गीय जीवन के छोटे-छोटे ब्यौरों का गुम्फन, नश्तक का-सा काटता, तीखा व्यंग्य और चुस्त चुटीले जुमले, उनकी कहानियों के प्रमुख गुण हैं।

मैत्रयी पुष्पा, चिन्हार: भारतीय लोकतंत्र के हिन्दी कथा-साहित्य में मैत्रेयी पुष्पा स्त्री-लेखन परंपरा का वह महत्वपूर्ण नाम है, जिसने अपने रचनात्मक लेखन से महिलाओं के लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए संघर्ष किया है। उन्होंने बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के लोकतांत्रिक भारत में स्त्रियों की स्थिति और अवस्था का जीवंत दृष्यांकन किया है। गुलाम भारत में 30 नवम्बर 1944 को अलीगढ के सकुर्रा गाँव में जन्म लेने वाली मैत्रीय पुष्पा का रचना-काल आजाद भारत रहा है। आजाद भारत में पांच दशक तक रचनारत रहने वाली हिन्दी लेखिका मैत्रयी पुष्पा ने अपनी लेखनी से हिन्दी साहित्य के कथा-कोष का विस्तार किया है। उनके महत्वपूर्ण उपन्यास हैं :- गुनाह-बेगुनाह, कही इसुरी फाग, त्रिया-हठ, बेतवा बहती रही, इद्न्नम, चाक, झूलानट, अल्मा कबुतरी, विजन और अगनपाँखी है। मैत्रयी की कहानियों का अनेक संग्रह प्रकाषित है, जिसमें फाइटर की डायरी, सम्पूर्ण कहानियाँ अब तक, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, पियारी का सपना,

www.ignited.in

गोमा हँसती है, ललमिनियाँ और चिन्हार नामक कहानी संग्रह प्रकाशित हैं। उन्होंने 'कस्तुरी कुंडली बसै' और 'गुडिया भीतर गुडिया' नाम से दो आत्मकथा लिखी है। उन्होंने 'मन्दाक्रांता' नामक नाटक भी लिखा है। मैत्रयी ने अपनी कहानी 'फैसला' पर टेलीफिल्म भी तैयार किया है, जिसका शीर्षक है-'बासुमती की चिटठी'। मैत्रयी पुष्पा ने नारी समस्या को केन्द्र में रखकर अनेक आलेख प्रस्तुत किये हैं, जो इन संग्रहों में उपलब्ध हैं- खुली खिडकियाँ, सुनो मालिक सुनो', चर्चा हमारी, आवाज, और तब्दील निगाहें'। हिन्दी साहित्य को अपनी विपुल रचना से समृद्ध करने वाली लेखिका मैत्रीय पुष्पा को अनेक साहित्य-सम्मान से नवाजा गया। मैत्रयी पुष्पा को सर्वप्रथम साहित्य अकादमी ने 1991 ई0 में 'साहित्य कीर्ति सम्मान' से सम्मानित किया है। सन् 1993 में उन्हें 'फैसला' कहानी के लिए 'कथा पुरस्कार' प्रदान किया गया।वे महात्मा गाँधी सम्मान, सरोजनी नायडू पुरस्कार सहित सार्क देशों से साहित्य विधा में सम्मान प्राप्त कर चुकी हैं। स्त्री के अस्तित्व और अस्मिता संकट के अनेक दुर्लभ दृश्य हिन्दी साहित्य ही नहीं, विश्व साहित्य में सर्वत्र मिल जाएगे। हिन्दी साहित्य में नारी की स्थिति और अवस्था का कारुणिक चित्रण मिलता है। नारी जीवन के सच को दिखाने के प्रयास में किये गये दृश्यांकन में पुरुष रचनाकारों का भी अमूल्य योगदान है, लेकिन स्त्री-लेखन ने इसमें त्वरा के संग विश्वसनीयता भी पैदा किया। यूँ तो साहित्य में नारी हमेशा से केन्द्र में रही है, लेकिन उसकी स्थिति एक पात्र की होती थी। अब वह स्वंय लेखक की भूमिका में है और बेबाकी से लिख रही है। इसलिए आज के बदले हालात में साहित्य के सौंदर्यशास्त्र के सामने भी नवीनता की संभावना जगी है।

मैत्रेयी पुष्पा की रचनाओं का कथा-काल भारतीय उपमहाद्वीप के आजादी पूर्व लगभग बीसवीं सदी के चैथे दशक से आरम्भ होकर 21 वीं सदी के सरहद को पार करती है। आधी सदी को अपने कथा-काल के रुप में समेटने का भगीरथ प्रयास मैत्रेयी ने किया है। मैत्रेयी ने अपनी रचनाओं में जितने बडे कथा-काल को समेटा है, वह भारतीय इतिहास का एक बडा और महत्वपूर्ण काल-खंड है। आजादी के पूर्व से शुरु होकर आजाद भारत के नेहरु-युग, इन्दिरा-युग और बाद के दिनों को भी अपना कथांष बनाया है। इस लम्बी अवधि में भारत गुलामी से आजादी, पुनर्जागरण से भारत-निर्माण, लोकतंत्र से समाजवाद, समाजिक से आर्थिक प्रगति तक का नारा दे चुका है।

निष्कर्ष

राजनीतिक परिस्थितियों की अपेक्षा सांस्कृतिक परिस्थितियों का साम्य और भी अधिक रहा है। पिछले सहस्राब्द में अनेक धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलन ऐसे हुए जिनका प्रभाव भारतव्यापी था। बौद्ध-धर्म के ह्रास के युग में उसकी कई शाखाओं और शैव-शाक्त धर्मों के संयोग से नाथ-संप्रदाय उठ खड़ा हुआ जो ईसा के द्वितीय सहस्राब्द के आरंभ में उत्तर में तिब्बत आदि तक, दक्षिण में पूर्वी घाट के प्रदेशों में, पश्चिम में महाराष्ट्र आदि में और पूर्व में प्रायःसर्वत्र फैला हुआ था। योग की प्रधानता होने पर भी इन साधुओं की साधना में, जिनमें नाथ, सिद्ध और शैव सभी थे, जीवन के विचार और भाव-पक्ष की उपेक्षा नहीं थी और इनमें से अनेक साधु आत्माभिव्यक्ति एवं सिद्धांत-प्रतिपादन दोनों के लिए कवि-कर्म में प्रवृत्त होते थे। भारतीय भाषाओं के विकास के प्रथम चरण में इन सम्प्रदायों का प्रभाव प्रायः विद्यमान था। इनके बाद इनके उत्तराधिकारी संत-सम्प्रदायों और नवागत मुसलमानों के सूफी-संत का प्रसार देश के भिन्न-भिन्न भागों में होने लगा। संत-संप्रदाय वेदांत दर्शन से प्रभावित थे और निर्गुण भक्ति की साधना तथा प्रचार करते थे। सूफी धर्म में भी निराकार ब्रह्म की ही उपासना थी, किंतु उसका माध्यम था उत्कट प्रेमानुभूति।

संदर्भ

भारतीय साहित्य की पहचान (गूगल पुस्तक ; लेखक - सियाराम तिवारी)

युग के माध्यम से भारतीय साहित्य (सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र)

भारतीय साहित्य की अवधारणा (प्रो ऋषभ देव शर्मा)

भारतीय साहित्य की भूमिका (गूगल पुस्तक ; लेखक - डॉ रामविलास शर्मा)

भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ (गूगल पुस्तक ; लेखक - डॉ रामविलास शर्मा)

भारतीय साहित्य (गूगल पुस्तक ; सम्पादक - मूलचंद गौतम)

साहित्य और सांस्कृतिक एकतासाहित्य और सांस्कृतिक एकता (बालशौरी रेड्डी)

प्राचीन भारतीय साहित्य का इतिहास (एम् विण्टरनिट्ज)

प्राचीन भारतीय साहित्य का इतिहास, भाग १, खण्ड १ - इतिहास, काव्य, पुराण

Corresponding Author

Vikash Kumar*

Research Scholar, Bhimrao Ambedkar University